विपश्यना पत्रिका संग्रह

(जुलाई १९७१ से जून १९७४ तक)

भाग-१

विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का

विपश्यना

पत्रिका संग्रह

भाग - १

(जुलाई १९७१ से जून १९७४ तक)

विपश्यनाचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का

विपश्यना विशोधन विन्यास

धम्मगिरि, इगतपुरी

विषयानुक्रमणिका

पत्रिका संग्रह भाग १

जुलाई १९७१ से जून १९७२ तक : पृष्ठ १ से ७०

उद्‌बोधन : सत्यधर्म १
धर्म-चक्र २
उद्‌बोधन : सविवेक श्रद्धा ६
धर्म ही रक्षक है ९
उद्‌बोधन : वर्तमान क्षण १२
धर्म का सर्वहितकारी स्वरूप १५
उद्‌बोधन : वयधम्मा सङ्खारा १९
चरथ भिक्खवे चारिकं २२
उद्‌बोधन : प्रकाश-पर्व २६
विजय पर्व २८
उद्‌बोधन : धर्मप्रज्ञा ३२
उद्‌बोधन : सही श्रद्धांजलि ३६
गुरुदेव ऊ बा खिन ३७
उद्‌बोधन : निर्लिप्त जीवन ४२
तृष्णा की गुलामी और मुक्ति ४३
उद्‌बोधन : ब्रह्मविहार ४७
दान-कथा ४८

उद्‌बोधन : शीलवान बनें..... ५३
शील-कथा..... ५४
उद्‌बोधन : मन का संवर..... ५८
समाधि कथा..... ५९
उद्‌बोधन : मोह-मूढ़ता..... ६५
प्रज्ञा-कथा..... ६६

जुलाई १९७२ से जून १९७३ तक : पृष्ठ ७३ से १३६

उद्‌बोधन : लोक-चक्र क्या है?..... ७३
लोक-चक्र और धर्म-चक्र..... ७४
उद्‌बोधन : सत्य दर्शन..... ७८
चार आर्य सत्य..... ७८
उद्‌बोधन : सही मरणानुस्मृति..... ८४
उद्‌बोधन : आर्यसत्यों का साक्षात्कार करें..... ८७
मतलब की बात करें..... ८७
उद्‌बोधन : अनित्य-दर्शन..... ९२
यह दुःख है (१)..... ९३
उद्‌बोधन : यथाभूत ज्ञान-दर्शन..... ९७
यह दुःख है (२)..... ९८
उद्‌बोधन : दुःख-दर्शन..... १०३
यह दुःख है (३)..... १०३
उद्‌बोधन : संतोष-जल छिड़कें..... १०९
दुःख क्यों है? (१)..... १०९
दुःख क्यों है? (२)..... ११५

उद्‌बोधन : तृष्णा की आग १२०
दुःख क्यों है? (३) १२१
उद्‌बोधन : त्रिधा पुण्यमयी वैशाख पूर्णिमा..... १२६
सत्य का साक्षात्कार १२६
रूप कथा (१)..... १३१

जुलाई १९७३ से जून १९७४ तक : पृष्ठ १३९ से २०८

रूप कथा (२)..... १३९
रूप कथा (३)..... १४६
उद्‌बोधन : ऐ मेरे मन! (१)..... १५२
उद्‌बोधन : ऐ मेरे मन! (२)..... १६०
उद्‌बोधन : ऐ मेरे मन! (३)..... १६६
रूप कथा (४)..... १७१
उद्‌बोधन : शुद्ध धर्म का सार..... १७६
अध्यात्मविद्या का नवीन प्रयोग 'विपश्यना'.....
(ले. : हरिश्चंद्र विद्यालंकार)..... १७७
उद्‌बोधन : धर्म धारण करें!..... १८१
विपश्यना साधना - एक परिचय.....
(ले. : ग्राहम गाम्बी) (*हिन्दी अनुवाद*)..... १८२
दस दिन का अभ्यास क्रम १८५
उद्‌बोधन : स्व-पर गुण दोष दर्शन..... १८७
विपश्यना भावना और जीवन के लिए उसका महत्त्व (१).....
ले. श्यामाप्रमाद "प्रदीप" (दैनिक "आज", वाराणसी).. १८८
सभी धर्मों, सभी विचारों के लिए समान रूप से ग्राह्य - साधना..... १८८
विपश्यना का प्रादुर्भाव १८८
सरल प्रक्रिया..... १९०

चतुर्थ प्राणायाम की तरह १९१

उद्‌बोधन : यथाभूत ज्ञानदर्शन.....१९२

विपश्यना भावना और जीवन के लिए उसका महत्त्व (२).....

ले. श्यामाप्रमाद "प्रदीप" (दैनिक "आज", वाराणसी)...१९३

जन्म-जन्मान्तर से अर्जित विकारों को नष्ट करने की प्रक्रिया १९३

विपश्यना की विधि १९५

बहुत ही वैज्ञानिक १९६

उद्‌बोधन : सौमनस्यता बढ़ायें १९८

विपश्यना भावना और जीवन के लिए उसका महत्त्व (३).....

ले. श्यामाप्रमाद "प्रदीप" (दैनिक "आज", वाराणसी)...१९९

मज्जन फल देखिय तत्काला : यहीं और इसी समय लाभ १९९

तुलनात्मक दृष्टि से.....२००

अद्भुत उपचार २०१

धर्म क्या है ? २०३

विपश्यना साहित्य २०९

विपश्यना साधना केंद्र.....२११

उद्‌बोधन : सविवेक श्रद्धा

प्यारे साधक-साधिकाओ!

धर्मप्रज्ञा जाग्रत रहे!

आओ! आज तुम्हें बुद्ध के जीवनकाल की एक घटना सुनाऊं।

वक्कलि नाम का एक विद्वान उपासक भगवान बुद्ध के आश्रम में गया। महापुरुषों के ३२ लक्षणों से परिपूर्ण तथागत के सुंदर तेजस्वी शरीर ने, उनके प्रभावशाली ओजस्वी व्यक्तित्त्व ने, उस भावुक उपासक को सहज ही आकर्षित कर लिया। उन भगवान अंगिरस के अंग-अंग से जो प्रभा-रश्मियां प्रस्फुटित हो रही थीं, उन्होंने वक्कलि को भावाभिभूत कर दिया। उनके अंतर से उमड़ने वाली अपरिमित मैत्री और करुणा तरंगों का गहरा प्रभाव भी था ही। वक्कलि ने चाहा कि वह भगवान की इस अनुपम रूप-राशि का ही दर्शन करता रहे। अतः वह घर से बेघर हो, दाढ़ी-मूंछ मुंड़ाकर, प्रव्रजित हुआ और भिक्षु संघ में सम्मिलित हो गया। केवल इसीलिए कि उसे भगवान का सान्निध्य-सुख अधिक से अधिक प्राप्त हो सके। अब वह भक्ति के आवेश में रस-लोलुप भौंरे की तरह भगवान की रूप-माधुरी के चारों ओर मंडराने लगा। न उसे शील का ध्यान, न समाधि द्वारा चित्त एकाग्रता का अभ्यास और न ही विपश्यना द्वारा प्रज्ञा जाग्रत करने का कोई प्रयास। जब देखो तब, भगवान के सामने बैठा हुआ उनके प्रभा-मंडित चेहरे को अपलक निर्निमेष देखता रहे। करुणामय भगवान तथागत ने देखा कि यह नया भिक्षु भक्ति-भावावेश में इतना अंधा हो गया है कि धर्म का सत्य स्वरूप समझ ही नहीं पा रहा है।

उन्होंने उसे फटकारते हुए कहा- "ये भोले भिक्षु! मेरे इस शरीर को पागलों की तरह क्या देख रहे हो? मेरे इस रूप में, इस काया में क्या रखा है? मेरी यह काया भी भीतर से उतनी ही गंदी है जितनी कि किसी भी अन्य की काया। यदि मुझे देखना है तो मेरे भीतर समाये हुए धर्म को देखो। जो धर्म को देखता है, वही मेरे सच्चे स्वरूप को देखता है। जो सही माने में मुझे देखता है, वह मेरे भीतर समाये हुए सत्य धर्म को ही देखता है, बाह्य शरीर को नहीं।"

यो खो वक्कलि धम्मं पस्सति सो मं पस्सति,
यो मं पस्सति सो धम्मं पस्सति॥

(संयुत्तनिकाय २.१०९)

महाकारुणिक की इस धर्म फटकार से अंध-भक्ति के भावावेश में डूबे हुए वक्कलि भिक्षु के प्रज्ञा-चक्षु खुले। उसे भगवान की यह बात समझ में आयी कि

उद्‌बोधन : वर्तमान क्षण

मेरे प्यारे साधक साधिकाओ!

धर्मप्रज्ञा जाग्रत रहे!

धर्मप्रज्ञा जाग्रत रखकर ही हम वर्तमान क्षण में जीना सीख सकेंगे। यह क्षण जो प्रत्युत्पन्न क्षण है, जो कि अभी-अभी उत्पन्न हुआ है, यही तो हमारे काम का है। जो क्षण बीत गये, उनको हम याद भले कर लें, पर उनमें हम जी नहीं सकते। जो क्षण अभी आये नहीं, उनकी हम कल्पना या कामना भले कर लें, परंतु उनमें हम जी नहीं सकते। हमारे जीने के लिए तो यही क्षण है जो अभी-अभी उत्पन्न हुआ है। अगर हम इस क्षण में जीते हैं, तो ही सही माने में जीते हैं, अन्यथा तो केवल मात्र जीने का बहाना करते हैं, वस्तुतः जीते नहीं। क्योंकि वर्तमान क्षण ही तो यथार्थ है और यथार्थ में जीना ही तो सही जीना है।

यह सच है कि प्रत्युत्पन्न क्षण, यानी अभी-अभी उत्पन्न हुआ क्षण, जरा देर के लिए भी टिकता नहीं। वह कितनी तेजी के साथ अतीत में विलीन होने के लिए भागा चला जा रहा है। परंतु इससे हमें निराश नहीं होना है। प्रत्येक वर्तमान क्षण जिस शीघ्रता के साथ भूतकाल की ओर भाग रहा है, उसी शीघ्रता के साथ आने वाला अगला क्षण उसका स्थान भी तो ले रहा है। भावी क्षण वर्तमान में धँसता चला आ रहा है। वर्तमान क्षण के विलीन होने के पूर्व नवीन क्षण उसका स्थान ले ही लेता है। इस प्रकार वर्तमान क्षण के अस्तित्व का क्रम बना रहता है। जिस द्रुत गति से वर्तमान क्षण उदय होता है, उसी द्रुत गति से लय भी हो जाता है। उदय और लय के बीच स्थिति के लिए भी जरा सा अवकाश नहीं रहता। इसी प्रकार जिस द्रुत गति से वर्तमान क्षण का लय होता है उसी द्रुत गति से उसके साथ जुड़े नए क्षण का उदय हो जाता है। इन दोनों के बीच जरा-सा भी अंतराल नहीं रहता। अगले क्षण से जुड़ते चले जाने के कारण इस क्षण के अस्तित्व का क्रम अनंत हो जाता है। इसीलिए कह सकते हैं कि इस अल्पजीवी लघुतम क्षण में जीना आ जाय तो अनंत में जीना आ जाय, अक्षय में जीना आ जाय। इस नन्हें से क्षण में जीने की कला हासिल करने के लिए ही यह विपश्यना साधना है, जिसमें कि हम इस क्षण उत्पन्न होने वाली स्थिति को बिना भूत और भविष्य के साथ जोड़े हुए उसके यथार्थ स्वरूप में देख सकने का अभ्यास करते हैं। हमारा यह अभ्यास अभी प्रारंभिक ही है और हम वर्तमान की सीमा को लघुतम बनाने का प्रयास कर रहे हैं। जैसे-जैसे यह परिधि संकुचित होती जायगी, वैसे-वैसे निकटतम अतीत और

उद्‌बोधन : निर्लिप्त जीवन

मेरे प्यारे साधक साधिकाओ!

धर्म-प्रज्ञा जाग्रत रहे!

धर्म-प्रज्ञा जाग्रत रहेगी तो मोह मूढ़ता दूर हटती जायगी। मोह-मूढ़ता दूर हटेगी तो राग से मुक्ति मिलेगी। राग से मुक्ति मिलेगी तो द्वेष से मुक्ति मिलेगी। राग और द्वेष से मुक्ति मिलते ही उनसे उत्पन्न होने वाले अन्य सभी मनोविकारों से मुक्ति मिल ही गयी। मनोविकारों से मुक्ति मिली तो दुःख से मुक्ति मिली, बंधनों से मुक्ति मिली।

राग-द्वेष तो जहां कहीं भी हो, दुःख के विधायक ही हैं। बंधन बांधने वाले ही हैं। और तो और विपश्यना साधना के क्षेत्र में भी राग द्वेष जागे तो पांव में बेड़ियां पड़ जायँ, प्रगति के पथ पर दीवारें खड़ी हो जायँ।

विपश्यना – साधना का काम तो राग और द्वेष को समाप्त कर देना है। राग-द्वेष जागते रहें तो विपश्यना-साधना कहां हुई?

विपश्यना-साधना के क्षेत्र में राग-द्वेष कैसे जागते हैं? विपश्यना-साधना के गहरे अभ्यास के लिए शरीर के अणु-अणु में उत्पत्ति और व्यय की संवेदना जागनी आवश्यक है। परंतु ऐसी संवेदना न जाग रही हो, अथवा अधूरी जाग रही हो तो ऐसी मनचाही संवेदना प्राप्त करने के लिए मन छटपटाने लगे, इस अनचाही स्थिति को दूर करने के लिए आकुल-व्याकुल होने लगे, और जब कभी ऐसी संवेदना प्राप्त हो जाय तब उसे ही सब कुछ मानकर खुशी से नाचने लगे तो यही राग-रंजन है, यही द्वेष-दूषण है। इस प्रकार राग-रंजित और द्वेष-दूषित हुआ साधक साधना में आगे बढ़ नहीं सकता।

निर्लिप्त रहकर, जो जैसा है उसे वैसा ही देखते रहने का नाम ही तो विपश्यना साधना है। राग-रंजित हो गए या द्वेष-दूषित हो गए तो निर्लिप्ति कहां रही?

निर्लिप्त हो जाने का मतलब निष्क्रिय हो जाना नही हैं। काम तो करते ही रहना होगा। अभ्यास तो चालू रखना ही होगा। निरंतर अभ्यास द्वारा ही तो समाधि पुष्ट होगी, चित्त एकाग्र होगा, कुशाग्र होगा, तीव्र संवेदनशील होगा। और तब अपने आप अविद्या का मोटा परदा फटेगा और सारे शरीर में सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदना अनुभूत होने ही लगेगी। अतः आवश्यक है कि अभ्यास की निरंतरता बनाए रखें। लोभ-लालसा से बचते हुए, द्वेष-दौर्मनस्य से बचते हुए, आलस्य-प्रमाद से बचते हुए, उद्विग्नता-उत्तेजना से बचते हुए, शंका-संदेह से बचते हुए,